d Only - You can't save changes to this...

DR. SARITA KUMARI
ASSISTANT PROFESSOR
DEPARTMENT OF SOCIOLOGY
R.K.D. COLLEGE, PATNA
PATLIPUTRA UNIVERSITY

DATE - 02/11/2020
CLASS - B.A (H) 3
PAPER - VIII
TOPIC - THEORIES OF CULTURE GROWTH

संस्कृति संवर्धन के सिद्धांत
(Theories of Culture Growth)

संस्कृति पूर्ण रूप से जड़ या स्थिर नहीं होती अपितु परिवर्तन एवं गतिशीलता पायी जाती है। यह मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। आवश्यकताओं के परिवर्तित होने एवं सामाजिक तथा प्राकृतिक पर्यावरण में परिवर्तन होने पर इन परिवर्तनों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए संस्कृति में भी परिवर्तन होते हैं। संस्कृति के विकास को प्रकट करने के लिए मानवशास्त्रियों ने अनेक सिद्धांत प्रस्तुत किये हैं जो निम्नवत हैं —

(1) उद्विकासवाद (2) प्रसारवाद

(1) उद्विकासवाद (Evolution)

उद्विकासवाद की सर्वप्रथम व्याख्या चार्ल्स डार्विन ने 1859 में अपनी पुस्तक 'Origin of Species' में प्राणियों के उद्विकास के लिए की। कालांतर में सभी क्षेत्रों एवं विषयों के विकास के लिए इस सिद्धांत का उपयोग किया जाने लगा। सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकासवाद का सिद्धांत भी अनेक बुद्धिजीवियों के कार्यों का परिणाम है जिसके द्वारा मानव सभ्यता के विकास को भी प्रकट करने का प्रयत्न किया गया।

प्रारंभिक उद्विकासवादियों की मान्यता थी कि संस्कृति का संवर्द्धन एक सीधी रेखा के रूप में एक निश्चित क्रम से हुआ है। विश्व की सभी संस्कृतियाँ कुछ निश्चित स्तरों से जटिलता की ओर, समानता से असमानता की ओर तथा अनिश्चितता से निश्चितता

Read Only - You can't save changes to this...

निश्चित क्रम से हुआ है। विश्व की सभी संस्कृतियाँ कुछ निश्चित स्तरों से जटिलता की ओर, समानता से असमानता की ओर तथा अनिश्चितता से निश्चितता की ओर हुआ है। उद्विकास का यह क्रम संस्कृति के विभिन्न भागों - भाषा, धर्म, परिवार, विवाह एवं समाज में देखा जा सकता है। इनका मानना है कि समान पर्यावरण मिलने पर सांस्कृतिक तत्वों का विकास समान रूप से होगा किन्तु पर्यावरण एवं परिस्थितियों की भिन्नता के कारण संस्कृति-तत्वों, संकुलों एवं प्रतिमानों में असमानता पायी जाती है।

इस संबंध में कई उदाहरण हैं जैसे — (a) 'मॉर्गन' मानव समाज एवं संस्कृति का उद्विकास एक सीधी रेखा में सरलता से जटिलता की ओर मानते हैं। इन्होंने मानव समाज के उद्विकास के 3 स्तर — आरण्य (जंगली), बर्बरता एवं सभ्यता माना है तथा प्रत्येक स्तर को निम्न, मध्यम एवं उच्च स्तरों में बांटा है।

(b) 'टायलर' ने धर्म के क्षेत्र में उद्विकासवाद को लागू किया और कहा कि धर्म का उद्विकास बहुदेववाद (Polytheism) से एकदेववाद (Monotheism) की ओर हुआ है।

(c) 'हेडन' ने उद्विकासवाद को कला पर लागू किया और कहा कि कला का उद्विकास यथार्थवादी कला (realistic art) से संकेतवादी कला (symbolic art) तथा रेखांचित (geometric art) की तरफ हुआ है।

आलोचना (Criticism) :—

i) समान संस्कृति-तत्वों की उत्पत्ति के समान कारण रहे हों, यह आवश्यक नहीं है। एक ही भौगोलिक पर्यावरण में भी भिन्न-भिन्न प्रकार की संस्कृतियाँ पनपती हैं।

ii) आलोचकों का मानना है कि समाज एवं संस्कृतियाँ कुछ

Read Only - You can't save changes to this...

i) समान संस्कृति-तत्वों का उत्पात के समान कारण रहे हों, यह आवश्यक नहीं है। एक ही भौगोलिक पर्यावरण में भी भिन्न-भिन्न प्रकार की संस्कृतियाँ पनपती हैं।

ii) आलोचकों का मानना है कि समाज एवं संस्कृतियाँ कुछ निश्चित स्तरों से होकर गुजरे यह आवश्यक नहीं है। कई ऐसे समाज हैं जिसमें समाज एक स्तर से गुजरे बिना ही दूसरे स्तर को प्राप्त कर लिया है। भारत में भी कई ऐसी जनजातियाँ हैं जो जंगलों में शिकार या पशुचारण करती थीं, अब उद्योगों में लगी हुई हैं और उन्होंने कभी कृषि कार्य नहीं किया।

iii) उद्विकासवादियों की अध्ययन पद्धति भी दोषपूर्ण रही है। वे सभी 'आर्म-चेयर वैज्ञानिक' थे जिन्होंने कभी क्षेत्र में जाकर कार्य नहीं किया। उद्विकासवादी अपने मत को प्रतिपादित करने के आदि हो चुके थे।

iv) उद्विकासवादियों ने प्रसार के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया है। संस्कृति सीखी जाती है, अतः भिन्न-भिन्न संस्कृति के लोग जब संपर्क में आते हैं तो वे परस्पर आदान-प्रदान करते हैं। परिणामस्वरूप संस्कृति का प्रसार दूर-दूर तक होता है। गोल्डनविजर का मानना है कि उद्विकासवादियों ने प्रसार की तरह आविष्कार के महत्व को भी भुला दिया है।

समाजशास्त्र

स्नातक (प्रतिष्ठा) - तृतीय वर्ष

पत्र - VIII

सामाजिक मानवशास्त्र

SUBODH CHOUDHARY
ASSISTANT PROFESSOR,
(SOCIOLOGY)
R.K.D. COLLEGE, PATNA.20
(PATLIPUTRA UNIVERSITY)

Read Only - You can't save changes to this...

(1)

* भारतीय जनसंख्या में प्रजातीय तत्वों का वर्गीकरण

Date - 1

भारतीय जनसंख्या में प्रजातीय तत्व की समस्या अस्पष्ट एवं जटिल है। समय-समय पर भारत में विभिन्न प्रजातीय समूह का प्रवेश होता रहा है। फलत: भारतीय जनसंख्या कई प्रजातीय समूहों एवं तत्वों का मिश्रण बनकर रह गई है। फिर भी समय-समय पर विभिन्न विद्वानों ने भारत की प्रजातियों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इन विद्वानों में रिजले, हेडन, हट्टन, गुहा, सरकार, मजूमदार का नाम लिया जाता है।

हर्बर्ट रिजले ने 1915 में भारतीय प्रजातियों का सर्वप्रथम व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत किया इन्होंने भारतीय प्रजातियों को सात वर्गों में रखा है-

(1) द्राविड़ियन - ये मद्रास हैदराबाद, दक्षिणी मध्यप्रदेश, दक्षिणी बिहार में झारखंड में पाए जाते हैं। इनका रंग काला कद छोटा, आँखें काली, नाक चौड़ी होती है। सिर लंब कपाल प्रकार का है। ये कॉकेशायड की शाखा भूमध्य-सागरीय प्रजाति से मिलते-जुलते हैं। रिजले के अनुसार, यही भारत की मूल प्रजाति है।

(2) इंडो-आर्यन - यह इंडो-आर्यन भाषा बोलनेवाले समूह है और ये पूर्वी पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, कश्मीर में पाए जाते हैं। जाट इनके प्रमुख प्रतिनिधि हैं। ये लंबे कद के तथा ऊँची पतली नाक और काली आँखोंवाले होते हैं। इनका सिर भी लंबकपाल होता है। ये नार्डिक प्रजाति के समरूप हैं।

(3) मंगोलायड - ये मुख्यत: असम, नेपाल, म्यानमार आदि क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इनमें एशियाटिक मंगोलायड के शारीरिक लक्षण पाए जाते हैं इन विशेषताओं में पीला रंग, चौड़ा सिर, चपटा चेहरा आदि प्रमुख हैं।

(4) इंडो-द्राविड़ियन या आर्यो-द्राविड़ियन- ये इंडो-आर्यन एवं द्राविड़ियन के मिश्रण हैं। लंबा कपाल,

(2)

चौड़ी से मध्यम नाक, रंग काला से भूरा इनके विशिष्ट शारीरिक लक्षण है। ये मुख्यतः उत्तरप्रदेश तथा बिहार में पाए जाते है।

(5) मंगोलो-द्राविड़ियन - ये मंगोल एवं द्राविड़ियन के मिश्रण से उत्पन्न हुए हैं। इनकी त्वचा का रंग काला तथा कद छोटा या मध्यम होता है। ये बंगाल एवं उड़ीसा में मुख्य रूप से पाए जाते है।

(6) स्कीदो द्राविडियन - ये मंगोल-प्रजाति की एक शाखा स्कीथियन एवं द्राविड़ियन के मिश्रण है। ये मुख्यतः सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कुर्ग आदि क्षेत्रों में पाए जाते है। इनकी नाक छोटी, रंग गोरा, सिर चौड़ा, कद मध्यम होता है।

(7) तुर्को-ईरानियन - ये चौड़े सिर, नुकीली नाक, लंबे कदवाले होते है। ये संभवतः तुर्क एवं ईरान के लोगों के मिश्रण के परिणाम है। ये अब बलूचिस्तान तथा उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान में पाए जाते है।

हर्बर्ट रिजले का मत है कि "इन में तीन मूल प्रजातियाँ है — द्राविड़ियन, मंगोल एवं ईंडो-आर्यन है तथा अन्य चार अन्तःप्रजातीय मिश्रण के परिणाम है। उन्होंने भारत में नीग्रीटो तत्व को अस्वीकार किया है या नगण्य माना है। द्राविड़ प्रजाति को छोड़ अन्य प्रजातियाँ बाहर से आई है अथवा मिश्रण से उत्पन्न हुई है। ईंडो-आर्यन उत्तर-पश्चिम से आए जो मंगोल भी बाहर से आकर उत्तर-पूर्वी भारत में बस गए। द्राविड़ों के साथ उनके मिश्रण से अन्य प्रजातियाँ विकसित हुई।

रिजले के प्रजातीय विश्लेषण की आलोचना कई आधारों पर की गई है। इस संबंध में हेडन का कहना है कि रिजले ने प्रजाति एवं भाषा समूह को एक ही समझा। आर्यन एवं द्राविड़ भाषाएँ है, प्रजातियाँ नहीं। हेडन का मत है कि भारत की मूल प्रजाति द्राविड़ नहीं है, बल्कि पूर्व-द्राविड़ समूह यहाँ के मूल निवासी थे।

Read Only - You can't save changes to this...

... प्रजातियाँ नहीं। हेडन का मत है कि भारत की मूल प्रजाति द्राविड़ नहीं है, बल्कि पूर्व-द्राविड़ समूह यहाँ के मूल निवासी थे।

Page No.:
Date:

हेडन के अनुसार भारत में पाँच प्रमुख प्रजातियाँ हैं -

(A) पूर्व-द्राविड़ियन या प्रोटो-आस्ट्रेलायड या वेड्डायड
(B) द्राविड़ियन या भूमध्यसागरीय
(C) इंडो-आर्यन
(D) इंडो-अल्पाइन, जिसे रिजले स्कीदो-द्राविड़ियन कहते हैं
(E) मंगोलायड

हट्टन के अनुसार रिजले या हेडन के वर्गीकरण में नीग्रीटो का उल्लेख नहीं है, जो भारत की प्राचीनतम प्रजाति है। उन्होंने हेडन के वर्गीकरण में भाषा समूह के स्थान पर प्रजाति का उल्लेख किया और एक छठी प्रजाति के रूप में नीग्रीटो को जोड़ दिया है जो इस प्रकार है -

(i) नीग्रीटो
(ii) प्रोटो-आस्ट्रेलायड या पूर्व-द्राविड़ियन
(iii) भूमध्यसागरीय या द्राविड़ियन
(iv) अल्पाइन प्रजाति की आर्मेनाइड शाखा
(v) मंगोलायड
(vi) इंडो-आर्यन या नार्डिक

SUBODH CHOUDHARY
ASSISTANT PROFESSOR
(SOCIOLOGY)
R.K.D. COLLEGE, PATNA-20
(PATLIPUTRA UNIVERSITY)

Name..... Subject..... Date.....

Prof. Krishna Mohan
Associate Professor
Dept. of Sociology
R.K.D College Patna
Patliputra University

B.A Sociology Hons part III
Paper VII

MARGIN

DO NOT WRITE IN THIS SPACE

Parent's Signature..... Teacher's Signature.....

Scanned by TapScanner

भिक्षुकों के विभिन्न प्रकार
(VARIOUS TYPES OF BEGGARS)

साधारणतया भिक्षुक अथवा 'भिखारी' शब्द से हमारे सामने तत्काल एक ऐसे बच्चे या असहाय व्यक्ति का चित्र उभर कर आ जाता है जो विकलांग या रोगी होने के कारण दूसरों के सामने हाथ फैलाकर सड़कों पर भीख माँग रहा होता है। वास्तव में भिखारियों की सही संख्या ऐसे भिखारियों की अपेक्षा कई गुना अधिक होती है। भिक्षावृत्ति की समस्या का हम वास्तविक अनुमान तभी लगा सकते हैं जब भिखारियों के विभिन्न रूपों से हम परिचित हो जायें। भारतीय परिस्थितियों में **डॉ. के. एच. कामा** (Katayun H. Cama)[1] ने सभी भिक्षुओं को 15 भागों में विभाजित किया है—(1) बाल-भिक्षुक, (2) शारीरिक रूप से दोषयुक्त भिक्षुक, (3) मानसिक रूप से हीन तथा मानसिक दोषों से युक्त, (4) रोगग्रस्त भिक्षुक, (5) स्वस्थ भिक्षुक, (6) धार्मिक साधु, (7) बनावटी धार्मिक साधु, (8) जनजातीय भिक्षुक, (9) नौकरी या रोजगार में लगे भिक्षुक, (10) छोटे व्यापारी के रूप में भिक्षुक, (11) अस्थायी रूप में बेकार लेकिन काम कर सकने योग्य भिक्षुक, (12) लगभग स्थायी रूप में बेकार लेकिन काम करने योग्य भिक्षुक, (13) स्थायी रूप से विकलांग लेकिन काम करने के योग्य भिक्षुक, (14) स्थायी रूप में बेकार और काम न कर सकने योग्य भिक्षुक, (15) स्थायी रूप में बेकार लेकिन काम करने के अनिच्छुक भिक्षुक। इस वर्गीकरण में डॉ. कामा ने सभी प्रकार की मनोवृत्तियों वाले तथा भिन्न-भिन्न विधियों से भिक्षा माँगने वाले भिखारियों को सम्मिलित किया है।

भारत में **समाज कल्याण विभाग** की ओर से भिक्षावृत्ति की समस्या के उल्लेख में भिखारियों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है। ये हैं—(1) बाल-भिक्षुक, (2) अस्वस्थ, दुर्बल, अयोग्य, असमर्थ एवं वृद्ध भिक्षुक, (3) स्वस्थ तथा पेशेवर भिक्षुक, तथा (4) धार्मिक उपदेशक। **डॉ. एम. एस. गोरे** ने दिल्ली में 600 भिखारियों का अध्ययन करके उन्हें निम्नांकित तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया :[2]

(1) धार्मिक भिक्षुक :
   (क) स्वस्थ भिक्षुक
   (ख) शारीरिक रूप से दोषपूर्ण भिक्षुक
(2) गैर-धार्मिक स्वस्थ भिक्षुक
(3) गैर-धार्मिक शारीरिक रूप से दोषपूर्ण भिक्षुक :
   (क) मानसिक रूप से दोषपूर्ण
   (ख) शारीरिक रूप से दोषपूर्ण
   (ग) कुष्ठ रोग से पीड़ित

इन सभी वर्गीकरणों के आधार पर भारत में पाये जाने वाले भिखारियों का यदि हम एक सरल तथा संक्षिप्त वर्गीकरण प्रस्तुत करना चाहें तो इन भिक्षुकों को अग्रांकित मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1 K. H. Cama, 'Types of Beggars' *Our Baggar Problem*, edited by B. M. Kumarappa.
2 M. S. Gore, *The Beggar Problem in Metropolitan Delhi* (1959), p. 28.

Scanned by TapScanner

(1) **बाल-भिक्षुक** (Child Beggars)

भिखारियों में बाल-भिक्षुकों की संख्या सम्भवतः सबसे अधिक होती है। ऐसे भिक्षुक भी दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो अपने माता-पिता के साथ भिक्षा माँगने का कार्य करते हैं और दूसरे वे जिनका कुछ समाज-विरोधी तत्वों के द्वारा भीख मँगवाने के लिए उपयोग किया जाता है। दूसरी श्रेणी के ये बाल-भिक्षुक वे बच्चे होते हैं जिनका या तो इस जघन्य कार्य के लिए अपहरण किया जाता है अथवा उन्हें उनके भिखारी माता-पिता से कुछ रुपयों में खरीद लिया जाता है। साधारणतया बाल-भिक्षुक शारीरिक रूप से सामान्य होते हैं लेकिन उनके प्रति दूसरों की दया और सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उन्हें तरह-तरह के अमानवीय कष्ट देकर अस्वस्थ और कभी-कभी विकलांग बना दिया जाता है। अक्सर भिखारी स्त्रियाँ अपनी कुछ महीनों की सन्तान को सुई चुभोकर या बार-बार यातना देकर उसे इस प्रकार रुलाती रहती हैं जिससे बच्चे की भूख के नाम पर अधिक से अधिक भिक्षा एकत्रित की जा सके। जो बच्चे अपने स्वामी अथवा गिरोह के लिए भीख माँगते हैं, उनके द्वारा एकत्रित सम्पूर्ण भीख को शाम को उनसे छीन लिया जाता है और भीख माँगने वाला बच्चा फिर भूखा और चिथड़ों में लिपटा रह जाता है। सड़कों, स्टेशनों, सिनेमाघरों, मन्दिरों के आस-पास और रेलों में भीख माँगने के अतिरिक्त अक्सर इन भिखारी बच्चों का शराब की भट्टियों, जुए के अड्डों तथा वेश्यालयों से सम्बन्धित अवैध कार्यों में भी उपयोग किया जाता है। इन सभी दशाओं से बाल-भिक्षुकों के शोषण, उत्पीड़न तथा यातनाओं का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

(2) **विकलांग भिक्षुक** (Physically Disabled Beggars)

इस श्रेणी में वे सभी भिक्षुक आ जाते हैं जो अन्धे, बहरे, लूले, लँगड़े, गूँगे अथवा किसी भी दूसरे रूप में शारीरिक रूप से विकलांग होते हैं तथा अपनी विकलांगता का सहारा लेकर भीख माँगने का कार्य करते हैं। ऐसे भिखारी स्त्री भी होती हैं और पुरुष भी, युवा भी हो सकते हैं तथा वृद्ध भी। साधारणतया ऐसे भिखारियों के लिए जनसाधारण की सहानुभूति अधिक होती है, इसलिए कभी-कभी स्वस्थ भिखारी भी स्वयं को विकलांग बनाकर अथवा झूठे ही अपने आपको विकलांग दिखाकर अधिक-से-अधिक भीख एकत्रित करने का प्रयत्न करते हैं। कहा जाता है कि सन् 1952 में जब चीन में स्वस्थ भिखारियों के लिए भिक्षा माँगने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तो कई वर्षों तक वहाँ भले-चंगे भिखारियों को मशीनों के द्वारा विकलांग बनाने का धन्धा बड़े जोरों के साथ चलता रहा। बाद में अत्यधिक प्रयास करने के बाद ही इस स्थिति पर नियन्त्रण लगाया जा सका।

(3) **मानसिक रूप से दुर्बल भिक्षुक** (Mentally Deficiant Beggars)

बहुत-से भिखारी कम बुद्धि अथवा विकृत मस्तिष्क होने के कारण भिक्षा माँगने लगते हैं। ऐसे व्यक्ति साधारणतया किसी भी नौकरी या रोजगार के द्वारा आजीविका उपार्जित करने में असमर्थ होते हैं। पूर्णतया पागल न होने के कारण सरकार से भी उन्हें किसी तरह का संरक्षण नहीं मिल पाता। मन्द बुद्धि के कारण उनमें आत्म-सम्मान की भावना का अभाव होता है, इसलिए वे बिना किसी संकोच के भिक्षावृत्ति में लग जाते हैं। इस श्रेणी के बहुत-से भिखारी अक्सर ऐसे मानसिक रोगों के शिकार होते हैं कि उन्हें पागल समझकर सड़कों पर बेसहारा घूमने तथा दूसरों से माँगकर कुछ खा लेने के लिए छोड़ दिया जाता है। ऐसे भिखारियों का जीवन सबसे अधिक दयनीय होता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति साधारणतया इनके पास खड़े

Scanned by TapSc

होना अथवा इनकी बात सुनना बहुत कम ही पसन्द करता है। इन्हें दया और सहानुभूति के कारण भीख नहीं मिलती बल्कि अक्सर इससे प्राप्त चौड़े मनोरंजन के कारण ही कुछ लोग इन्हें भीख दे देते हैं। धीरे-धीरे इस श्रेणी के भिखारी पूर्णतया पागल बनने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

(4) **रोगग्रस्त भिक्षुक** (Diseased Beggars)

इन भिक्षुकों की दशा अत्यधिक दयनीय होती है। इनमें हम उन भिखारियों को सम्मिलित करते हैं जो अत्यधिक गम्भीर कोढ़, यौन रोगों, त्वेदिक तथा चर्म रोगों आदि के शिकार होते हैं। यद्यपि अधिकांश कोढ़ी भिखारी आनुवंशिक रूप से भीख माँगने का कार्य करते हैं लेकिन इनमें कुछ भिखारी ऐसे लोग भी होते हैं जिन्हें अपने परिवार, सम्बन्धियों तथा आजीविका के क्षेत्र में कहीं कोई भी सहारा नहीं मिलता। इस वर्ग के भिखारियों के लिए जनसाधारण के मन में सबसे अधिक सहानुभूति होती है, इसलिए इन्हें अक्सर भीख में काफी अधिक पैसा तथा वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं। इससे प्रेरित होकर कभी-कभी स्वस्थ भिखारी भी अपने शरीर पर इस तरह के पेण्ट लगा लेते हैं अथवा हाथ-पैरों पर चीनी के पानी में भिगोया कपड़ा बाँध लेते हैं जिससे उनके ऊपर उड़ती हुई मक्खियों के कारण उन्हें भी कोढ़ का रोगी समझा जा सके। यह रोगग्रस्त भिखारी जन स्वास्थ्य के लिए एक गम्भीर खतरा उत्पन्न कर देते हैं क्योंकि सार्वजनिक स्थानों पर इनके घूमने से अन्य व्यक्तियों में भी इनकी संक्रामक बीमारियों का संचरण होने का डर बना रहता है। वैसे इस श्रेणी के भिखारी स्वयं अपना इलाज करवाने में रुचि नहीं लेते क्योंकि यही रोग उनकी आजीविका का आधार होते हैं।

(5) **स्वस्थ भिक्षुक** (Able-bodied Beggars)

बहुत-से बच्चे, प्रौढ़ तथा वृद्ध स्त्री-पुरुष पूर्णतया स्वस्थ होते हुए भी भिक्षावृत्ति में लगे होते हैं। साधारणतया इस वर्ग के भिक्षुक वे व्यक्ति होते हैं जो अत्यधिक निकम्मे, कामचोर, लापरवाह तथा अविश्वस्त होते हैं अथवा किसी धार्मिक अन्धविश्वास का शिकार होते हैं। भारत में कुछ समय पहले तक अनेक व्यक्ति सड़कों पर इसलिए भीख माँगने के लिए बाध्य होते थे कि किसी गाय, बैल, बिल्ली अथवा अन्य प्राणी की हत्या के कारण उन्हें उनकी जाति-पंचायत द्वारा कुछ समय के लिए भीख माँगकर अपने पाप का प्रायश्चित करने का आदेश दिया जाता था। इस वर्ग के भिक्षुक को जनसाधारण की सहानुभूति सबसे कम मिलती है, इसलिए स्वस्थ भिक्षुकों का एक बड़ा वर्ग कठपुतली का नाच दिखाकर, सार्वजनिक स्थानों पर नाच-गाने के द्वारा अथवा घरों के दरवाजों पर गीत गाकर भिक्षा प्राप्त करते हैं। इस सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि स्वस्थ भिक्षुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक होती है। जब कभी भी देश के किसी भाग में बाढ़, सूखा, भूकम्प या युद्ध के कारण कोई विपत्ति उत्पन्न होती है, इस वर्ग की भिक्षुक स्त्रियों के दल के दल दूरस्थ नगरों में फैलकर स्वयं को ऐसी विपत्तियों का शिकार बताते हैं और इस प्रकार दयालु लोगों से काफी अधिक सहायता के रूप में भिक्षा प्राप्त कर लेते हैं। अक्सर इन भिक्षुकों द्वारा एकत्रित खाद्यान्न और वस्त्रों को निम्न श्रेणी की बस्तियों में बेचने का कार्य भी किया जाता है। इस श्रेणी के अधिकांश भिक्षुक पैतृक रूप से भिक्षावृत्ति का व्यवसाय चलाते हैं।

Only - You can't save changes to this...

(6) धार्मिक भिक्षुक (Religious Beggars)

इस वर्ग के भिक्षुक पाँचवीं श्रेणी के भिक्षुकों से इस अर्थ में भिन्न हैं कि ये पूर्णतया स्वस्थ होते हुए भी धार्मिक वेश में भिक्षा प्राप्त करते हैं तथा स्वयं को भिखारी प्रदर्शित नहीं करते। हमारे देश में इस श्रेणी के भिक्षुकों द्वारा भिक्षा माँगने के तरीकों तथा इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। धार्मिक भावनाओं की प्रधानता के कारण इन भिक्षुकों को दान की भावना से मिलने वाली भिक्षा की मात्रा भी बहुत अधिक होती है। इसके परिणामस्वरूप इस श्रेणी के भिक्षुकों में से अधिकांश हिंसा, अनैतिकता तथा अपराधी व्यवहारों के द्वारा जीवन व्यतीत करते हैं क्योंकि उनका जीवन पूर्णतया स्वतन्त्र, उच्छृंखल तथा उत्तरदायित्व की भावना से हीन होता है। इस श्रेणी के भिक्षुकों की मनोवृत्तियाँ तथा भिक्षा माँगने के ढंग के आधार पर उन्हें तीन अन्य उप-भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) साधु वेशधारी भिक्षुक (Mendicants)—ऐसे भिक्षुकों की संख्या आज निरन्तर बढ़ती जा रही है। गेरुआ वस्त्र धारण करके भिक्षा माँगने का काम अक्सर समूह बनाकर किया जाता है। अपने साधु वेश में ये भिक्षुक ऐसा प्रदर्शित करते हैं जैसे वे भीख माँगकर किसी बहुत बड़े धार्मिक आयोजन, भण्डार या मन्दिर के निर्माण के लिए दान माँग रहे हों, किन्तु वास्तव में इनके द्वारा एकत्रित 'दान' को छोटी दुकानों अथवा पिछड़ी बस्तियों में बेचकर धन अर्जित किया जाता है। संकोची, अपढ़ तथा ग्रामीण महिलाओं को यह ऊँची और भारी आवाज में शाप का भय दिखाकर भी उनसे काफी भिक्षा प्राप्त कर लेते हैं। इनमें से बहुत-से भिक्षुक अक्सर चोर, डाकू और जघन्य अपराध करने वाले व्यक्ति भी होते हैं जो भिक्षा के माध्यम से घर की आर्थिक स्थिति तथा सदस्यों की संख्या को आँकने में भी बड़े प्रवीण होते हैं। धार्मिक पर्वों और मेलों में ऐसे भिक्षुक सबसे अधिक सक्रिय हो जाते हैं। इनको अन्य भिक्षुकों के समान तिरस्कृत और अपमानित भी नहीं किया जा सकता क्योंकि इस स्थिति में इनके गिरोह के दूसरे सदस्य तुरन्त इकट्ठा होकर अपमान करने वाले व्यक्ति को घेर लेते हैं और अन्धविश्वासी जनसमूह गिरोह बने इन समाज विरोधी तत्वों को साधु समझता रहता है।

(ख) धार्मिक केन्द्रों के भिक्षुक (Mendicants of Religious Centres)—भारत में अनेक धार्मिक नगरों, जैसे—मथुरा, काशी, अयोध्या, इलाहाबाद, गया, द्वारिका तथा दक्षिण के बहुत-से दूसरे स्थानों में ऐसे भिक्षुकों की संख्या बहुत अधिक है जो धर्म के आवरण में भिक्षा माँगकर आजीविका उपार्जित करते हैं। गंगा-यमुना के घाटों पर ये व्यक्ति यात्री की इच्छा न होने पर भी अकस्मात् पीछे से आकर उसके माथे पर टीका लगा देते हैं, कुछ फूल पकड़ाकर इसे माता का प्रसाद बताते हुए अथवा यात्री के मना करते रहने पर भी उसके साथ मन्दिरों का वृत्तान्त बताते हुए घूमते रहते हैं। बाद में यात्री को कुछ दक्षिणा के नाम पर भिक्षा देने के लिए बाध्य करते हैं। इन केन्द्रों में ये सभी भिक्षुक अपने को ब्राह्मण बताते हैं चाहे उनकी जाति कुछ भी हो।

(ग) उपदेशक भिक्षुक (Preacher Beggar)—धार्मिक वेशभूषा में बहुत-से चतुर भिखारी उपदेशक की भूमिका निभाकर भिक्षावृत्ति करते हैं। इस वर्ग के भिखारियों की संख्या धार्मिक केन्द्रों में बहुत अधिक होती है। ये भिक्षुक कुलीनता के आवरण और सम्भ्रान्त भाषा की सहायता से इतनी अधिक भिक्षा अथवा तथाकथित दान एकत्रित कर लेते हैं कि अक्सर इस वर्ग के भिक्षुकों का जीवन-स्तर मध्यम वर्ग के जीवन-स्तर से भी अच्छा बन जाता है। साधारणतया ये भिक्षुक मेलों, त्यौहारों, गंगा के तटों अथवा सार्वजनिक स्थानों पर कहीं भी

Scanned by TapS

बैठकर कथा या रामायण का पाठ आरम्भ कर देते हैं। जब भक्तों की भीड़ एकत्रित हो जाती है तो बार-बार बड़े नाटकीय ढंग से पूजा की आरती घुमायी जाती है और इस प्रकार चढ़ावे के रूप में भीख एकत्रित की जाती है। कथा या रामायण के पाठ में इनका मुख्य कार्य उस विशेष दिन पर दिये जाने वाले दान की महिमा का बखान करना होता है। अनेक उपदेशक भिक्षुक तो पूरे वर्ष के 365 दिनों में दिये जाने वाले 'दान' की महिमा की पुस्तक छपवाकर इसका अन्धविश्वासी लोगों में खूब प्रचार करते हैं। कुछ अधिक चतुर भिक्षुक 'सन्त' की भूमिका निभाकर अपनी पूरी जिन्दगी धर्मपरायण गृहस्थों के घरों में रहकर काट देते हैं। इन्हें कुछ काम भी नहीं करना पड़ता और भोजन तथा वस्त्रों की भी शानदार व्यवस्था होती रहती है।

भिक्षुकों के उपर्युक्त सभी प्रकारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भिक्षावृत्ति की समस्या आज कितना व्यापक रूप ग्रहण कर चुकी है तथा इसके परिणामस्वरूप सामाजिक तथा नैतिक स्वास्थ्य के लिए कितना गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया है।

Read Only - You can't save changes to this...

Dr. SARITA KUMARI
ASSISTANT PROFESSOR
DEPARTMENT OF SOCIOLOGY
R.K.D. COLLEGE, PATNA
PATLIPUTRA UNIVERSITY

DATE – 06/11/2020
CLASS – B.A.(H)-3
PAPER – VIII
TOPIC – THEORIES OF CULTURE GROWTH

शेष...

संस्कृति संवर्धन के सिद्धांत
(THEORIES OF CULTURE GROWTH)

संस्कृति संवर्धन का सिद्धांत

- उद्विकासवाद
- नव-उद्विकासवाद
- प्रसारवाद

नव-उद्विकासवाद

उद्विकासवाद की कमियों को दूर करने के लिए विद्वानों ने उद्विकास को संशोधित रूप में प्रस्तुत किया जिसे नव-उद्विकासवाद कहा गया। लेस्लीव्हाइट एवं स्टीवर्ड इसके मुख्य विचारक हैं। नव-उद्विकासवादियों का मत है कि उद्विकास एक सीधी रेखा में न होकर अनुवृत्त वक्र-रेखा (Parabolic Curve) के रूप में होता है। इसके अनुसार कोई भी सामाजिक संस्था एक विशिष्ट रूप में प्रारंभ होती है, धीरे-धीरे वह उसकी विपरीत दिशा की ओर विकसित होती है और आगे चलकर पुनः अपने मूल रूप की ओर मुड़ जाती है, किन्तु एक नए एवं उच्च परिवर्तन के साथ।

उदाहरण – प्रारंभ में सामूहिक संपत्ति पायी जाती थी, धीरे-धीरे व्यक्तिगत संपत्ति का महत्व बढ़ा और आज पुनः राज्य के द्वारा संपत्ति पर सामूहिक अधिकार की धारणा पनपी है।

लेस्लीव्हाइट का नव-उद्विकासवाद :— लेस्लीव्हाइट नव-उद्विकासवाद एवं संस्कृतिवाद के मुख्य

प्रवर्तक माने जाते हैं। इनकी मान्यता है कि मानव का सांस्कृतिक विकास उसकी ऊर्जा (Energy) पर निर्भर करता है। अपने उपयोग के लिए मानव ...

नव-उद्विकासवाद एवं संस्कृतिवाद के मुख्य

प्रवर्तक माने जाते हैं। इनकी मान्यता है कि मानव का सांस्कृतिक विकास उसकी ऊर्जा (Energy) पर निर्भर करता है। अपने उपयोग के लिए मानव ज्यों-ज्यों ऊर्जा पर नियंत्रण करता जाता है उसी गति से उसका सांस्कृतिक विकास होता जाता है। आदिम अवस्था में मानव का ऊर्जा पर नियंत्रण बहुत कम था। पशु और यंत्र शक्ति पर नियंत्रण बढ़ने के साथ-साथ सांस्कृतिक विकास की गति भी तीव्र हुई। अर्थात ऊर्जा पर अधिकार बढ़ने के साथ-साथ संस्कृति परिवर्तित एवं परिवर्द्धित भी होती है।

स्टीवर्ड का नव-उद्विकासवाद :—

इन्होंने उद्विकास के एकमार्गी सिद्धांत के स्थान पर बहुमार्गी सिद्धांत प्रस्तुत किया। इनकी मान्यता है कि विश्व की सभी संस्कृतियाँ उद्विकास के समान स्तरों से नहीं गुजरी हैं। वरन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में इसका क्रम भी भिन्न रहा है। हिम-प्रदेश, मरुस्थल, मैदानों और वनों की संस्कृतियों के विकास का क्रम परिस्थितियों की भिन्नता के कारण भिन्न रहा है। पेरु, मेक्सिको अमरीका, मेसोपोटामिया, मिस्र एवं चीन की संस्कृतियों के अध्ययन द्वारा स्टीवर्ड ने बताया कि ये संस्कृतियाँ कृषि-पूर्व युगीन स्थिति से प्रारंभ होकर क्रमशः प्राथमिक कृषि, संस्कृति निर्माण एवं स्थायित्व काल, क्षेत्रीय विकास एवं चक्रीय विजयों के अनुरूप विकसित हुई है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न संस्कृतियों ने विभिन्न मार्गों से उद्विकसित होकर समान अवस्था प्राप्त की।

प्रसारवाद

संस्कृति के उद्विकासवादी सिद्धांत की वैज्ञानिक आलोचना के परिणामस्वरूप बीसवी सदी के प्रारंभ में प्रसारवादियों ने उद्विकासवादियों के एकमार्गी उद्विकास, मानव की

मानसिक ... एवं ... अधिकार के ...

Read Only - You can't save changes to this...

प्रसारवाद

संस्कृति के अद्विकासवादी सिद्धांत की वैज्ञानिक आलोचना के परिणामस्वरूप बीसवी सदी के प्रारंभ में प्रसारवादियो ने उद्विकासवादियों के एकमार्गी उद्विकास, मानव की

Page No.: 3
Date: YOUVA

मानसिक एकता एवं स्वतंत्र अविष्कार के तर्कों का खण्डन किया और व्यक्ति मानव की अविष्कार करने की क्षमता सीमित है मानव में अनुकरण करने एवं ग्रहण करने की शक्ति भी असीमित है। अतः जब दो सांस्कृतिक समूह संपर्क में आते हैं तो उनमें एक-दूसरे के रीति-रिवाजों, प्रथाओं, धर्म, कला, भौतिक वस्तुओं, भाषा, वस्त्र, बर्तन, भोजन आदि का आदान-प्रदान होता है। इसके परिणामस्वरूप एक स्थान पर अविष्कृत सांस्कृतिक तत्व दूसरे स्थान पर फैलते हैं जिसे प्रसारवाद कहा गया।

इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:—

i) सांस्कृतिक समूह दूसरे सांस्कृतिक समूह की संस्कृति या उसके तत्वों को तभी अपनाता है जब वह उसके लिए अर्थपूर्ण एवं उपयोगी हो।

ii) प्रसार के दौरान संस्कृति-तत्व के मूल रूप में परिवर्तन आ जाता है।

iii) प्रसार साधारणतः 'उच्च' संस्कृति से 'निम्न' संस्कृति या विकसित से अविकसित संस्कृति की ओर होता है।

iv) सांस्कृतिक प्रसार के कारण ग्रहण करने वाले समूह में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन घटित हो सकते हैं।

v) सांस्कृतिक प्रसार की मुख्य बाधाएँ — यातायात एवं संचार, समुद्र, रेगिस्तान, पहाड़ एवं संपर्क का अभाव आदि हैं।

To be continued ....